गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों की आवश्यकताएँ एवं चुनौतियाँ

प्रदीप बौहरे
अयूब ख़ान
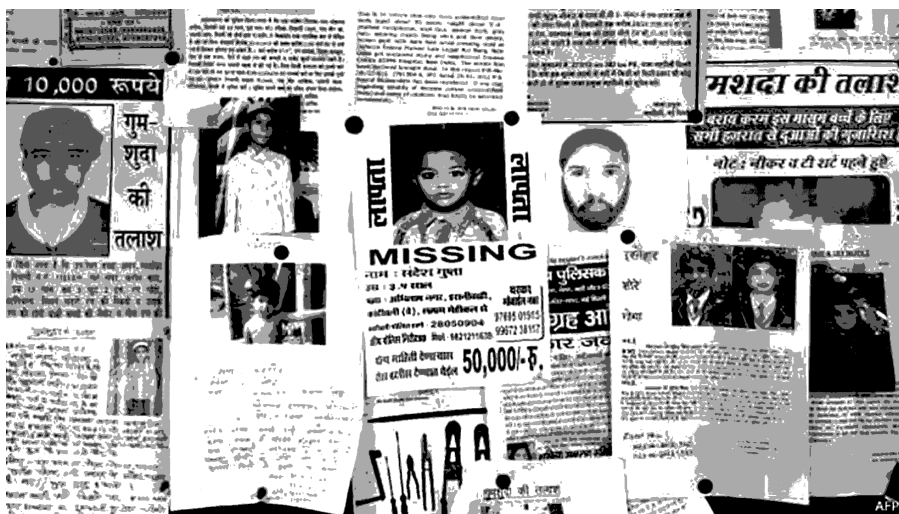
सामान्यत: कुछ विशिष्ट घटनाओं के संदर्भ में ही गुमशुदा व्यक्तियों के विषय को सार्वजनिक वार्तालाप में उठाया जाता है। कभी-कभी यह प्रश्न भी उठता है कि क्या सभी पंजीबद्ध गुमशुदा अंतत: ढूँढ़ लिए जाते हैं और उनकी तलाश में पुलिस की भूमिका कितनी प्रभावकारी रहती है? गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों का उनके जाने के बाद क्या होता है तथा उनके सगे-संबंधियों का जीवन कैसा होता है? सापेक्षिक रूप से गुमशुदा व्यक्तियों की वास्तविकता एक घटना के रूप में केवल उन हाय प्रोफ़ाइल प्रकरणों तक सीमित नहीं होती जो समय-समय पर अख़बारों की सुर्खियाँ बनते हैं या प्रचार के अन्य माध्यमों में चर्चित होते हैं, बल्कि उन हज़ारों-हज़ार व्यक्तियों में होती है जो किसी भी कारण से प्रत्येक वर्ष गुम हो रहे हैं। इन लापता व्यक्तियों में से कुछ ऐसे भी होते हैं जो कभी नहीं मिलते अथवा दुर्घटना के शिकार हो जाते हैं और कुछ ऐसे जिनकी गुमशुदगी पंजीबद्ध नहीं की जाती या जिनकी तलाश नहीं की जाती।

दुर्भाग्यवश आज भी भारत में गुमशुदा व्यक्तियों संबंधी प्रामाणिक आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। हालाँकि स्थानीय पुलिस इस संबंध में अपने स्तर पर आँकड़े अवश्य एकत्रित करती है

किंतु राष्ट्रीय स्तर पर इनका मिलान नहीं किया जाता।[1] पुलिस द्वारा एकत्र आँकड़े गुमशुदा व्यक्तियों की परिशुद्ध संख्या इसलिए भी प्रस्तुत नहीं करते क्योंकि पुलिस केवल उन घटनाओं को दर्ज करती है जो उन तक पहुँचती हैं।

I

दुनिया के विभिन्न देशों में गुमशुदा बच्चों तथा युवाओं पर कुछ अध्ययन अवश्य हुए हैं, जिनमें से अधिकांश घर से भागने वाले बच्चों पर केंद्रित हैं। भारत में गुमशुदा बच्चों तथा स्त्रियों के अध्ययनों की बाढ़ वर्ष 2006 में नोएडा, उत्तर प्रदेश के निठारी गाँव में 30 लापता बच्चों के साथ हुए अत्यधिक घृणित कार्य तथा शोषण के सबसे ख़राब स्वरूप को प्रदर्शित करने वाली घटना के बाद आई। निठारी कांड के बाद राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, नई दिल्ली ने इस बहुस्तरीय तथा बहुआयामी जटिल समस्या के लिए एक अनुभव आधारित अध्ययन की आवश्यकता महसूस की तथा शंकर सेन और पी.एम. नायर के नेतृत्व में समाज विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली के सहयोग से एक विस्तृत अध्ययन किया। वर्ष 2004 से 2006 तक किए गए इस अतिमहत्त्वपूर्ण अध्ययन की रिपोर्ट क़ानून की कमियों, क़ानून प्रवर्तन अभिकरणों के तालमेल के अभाव, संगठित गिरोह की संलिप्तता तथा तस्करी की शिकार महिलाओं एवं बच्चों की व्यथा को उजागर करती है।[2] वर्ष 2005 में चाइल्डलाइन इंडिया फ़ाउंडेशन ने 'गुमशुदा बच्चों' पर एक स्वतंत्र अध्ययन समन्वित किया। तीस शहरों में सातों दिन चौबीसों घंटे चलने वाली चाइल्डलाइन की नि:शुल्क दूरभाष सेवा पर प्राप्त फ़ोनकॉल पर आधारित अध्ययन गुमशुदा बच्चों की ज़मीनी हक़ीक़त दर्शाता है। उक्त अध्ययन यह भी स्पष्ट करता है कि यद्यपि निठारी कांड के बाद तथ्य व गुमशुदा बच्चों की संख्या अवश्य बदली है परंतु ये समस्या लगातार बढ़ रही है।[3]

बचपन बचाओ आंदोलन[4] द्वारा एक वृहद अध्ययन सूचना के अधिकार आवेदनों के आधार पर वर्ष 2008 से 2010 के मध्य लापता बच्चों पर संपादित किया गया। गुमशुदा बच्चों की समस्या की प्रकृति व उसका विस्तार जानने तथा परिस्थितिजन्य विश्लेषण कर एक नीतिगत ढाँचा तैयार करने के उद्देश्य से किए गए उक्त अध्ययन से न केवल उन कारणों और तरीक़ों को पहचानने में सहायता मिली जिनसे गुमशुदा बच्चों की समस्या से निपटा जा सकता

[1] राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड्स ब्यूरो, नई दिल्ली भी इस स्थिति में नहीं होता कि गुमशुदा व्यक्तियों संबंधी राष्ट्रीय आँकड़े प्रस्तुत कर सके. राज्य सरकारों द्वारा प्राप्त गुमशुदा व्यक्तियों की सूचनाएँ ब्यूरो के प्रलेखन केंद्र (डॉक्यूमेंटेशन सेंटर) तक अथवा अधिकतम ट्रांसफ़र डेस्क तक ही भेजी जाती हैं, क्योंकि एनसीआरबी ऐसे प्रकरणों की जाँच या निगरानी करने वाला संगठन नहीं है. पहले राज्यों की पुलिस गुमशुदा व्यक्तियों को ढूँढ़ निकालने या स्वत: लौटने वालों की कोई जानकारी एनसीआरबी नहीं देती थी किंतु अब ब्यूरो ने 'तलाश' सूचना व्यवस्था के अंतर्गत ऐसे आँकड़े एकत्रित करना आरंभ कर दिए हैं.

[2] शंकर सेन और पी.एम. नायर (2005) ट्रैफ़िकिंग इन वीमेन ऐंड चिल्ड्रेन इन इंडिया, नई दिल्ली : ओरिएंट लौंगमैन.

[3] चाइल्डलाइन इंडिया फ़ाउंडेशन (2007) *'मिसिंग चिल्ड्रन ऑफ़ इंडिया : इश्यू.ज ऐंड अप्रोचेज़-ए-चाइल्डलाइन पर्सपेक्टिव'*, सीआईएफ़, मुंबई.

[4] बचपन बचाओ आंदोलन भारत में एक आंदोलन है जो बच्चों के हित और अधिकारों के लिए कार्य करता है.

है बल्कि यह भी स्पष्ट हुआ कि गुमशुदा बच्चों के मामलों में क़ानून को व्याख्यायित तथा लागू करने के साथ-साथ घटना की जाँच-पड़ताल की ज़िम्मेदारी एक पुलिस अधिकारी के ज्ञान तथा समस्या हल करने के तरीक़े पर और गुमशुदा बच्चे के माता-पिता की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि पर निर्भर करती है।[5]

गुमशुदा बच्चों एवं स्त्रियों पर किए गए अध्ययनों की तुलना में गुमशुदा वयस्कों पर शोध साहित्य की कमी है और जिन्होंने इस विषय पर अध्ययन किए हैं, उन्होंने भी गुमशुदा व्यक्तियों की विशेषताओं को जानने, गुम होने के सवाल को परिभाषित करने अथवा उनके प्रकारों को निर्मित करने का कार्य किया है। ये थोड़े से अध्ययन भी सैद्धांतिक रूप से पुलिस आँकड़ों के विश्लेषण पर आधारित हैं, चाहे वह अमेरीकियों पर किया गया अध्ययन हो, जो गुमशुदा व्यक्तियों की विशेषताओं का एवं उनके लापता होने और वापस आने की परिस्थितियों का वर्णनात्मक विश्लेषण करता है[6] अथवा ऑस्ट्रेलिया में 270 गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों तथा मित्रों पर किया गया अध्ययन, जिसका उद्देश्य गुमशुदा प्रकरणों के कारण ऑस्ट्रेलियाई समुदाय को होने वाली सामाजिक तथा आर्थिक लागत का मूल्यांकन करना था।[7] ये दोनों अध्ययन 'गुमशुदा' को परिभाषित करने में आने वाली अवधारणात्मक जटिलताओं को उठाते हैं तथा वयस्क गुमशुदा के मुद्दे पर अध्ययनों की कमी को रेखांकित करते हैं। ऑस्ट्रेलिया में किए गए अध्ययन में गुमशुदा व्यक्तियों की परिस्थितियों तथा अभिप्रेरणाओं को जानने के लिए उनके परिवारों और/अथवा उन एजेंसियों से भी अतिरिक्त जानकारी एकत्रित की गई जो गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों के साथ कार्य करती हैं। इन अतिरिक्त तथ्यों से अध्ययन में यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया कि लोग जानबूझकर लापता हुए अथवा नहीं। क्या यह मुद्दा गुमशुदा व्यक्ति के विभिन्न स्वरूपों जैसे बाग़ी, प्रतिकूल परिणामों से बचने के लिए तथा अनचाहे में गुमशुदा को निर्मित करने के प्रयासों को मज़बूत करता है।[8]

ऐसे परिवारों के अनुभवों पर तो बहुत ही कम या न के बराबर अध्ययन हुए हैं जिनके घर से कोई लापता है। पी.जी. बॉस[9] द्वारा गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों पर किए गए अध्ययनों से कुछ प्रासंगिक अवधारणाएँ विकसित हुईं। उसने ऐसे परिवारों के संबंध में विस्तार से लिखा है जो 'अस्पष्ट क्षति' भुगतते हैं; चाहे वह परिवार के किसी सदस्य के गुमुशदा होने की वजह से हो और उसकी नियति अज्ञात हो या ऐसे व्यक्ति के कारण हो जो सशरीर तो उपस्थित हो किंतु उसका व्यक्तित्व अल्ज़ाइमर या डिमेंशिया से पीड़ित होने के कारण खो गया हो। 'अस्पष्ट

---

[5] बचपन बचाओ आंदोलन (2012) 'मिसिंग चिल्ड्रन ऑफ़ इंडिया : ए सिनॉप्सिस', बीबीए, न्यू दिल्ली.

[6] जे.डी. हिर्शेल और एस.पी. लैब (1988) 'हू इज़ मिसिंग? द रियलिटीज ऑफ़ द मिसिंग पर्संस प्रॉब्लम', *जर्नल ऑफ़ क्रिमिनल जस्टिस*, वॉल्यूम-16 : 35-45.

[7] एम. हेंडर्सन, पी. हेंडर्सन और सी. कियरनन, (2000) *मिसिंग पर्संस : इन्सीडेंसस, इश्यूज ऐंड इम्पैक्ट्स*, ट्रेंडस ऐंड इश्यूज इन क्राइम ऐंड क्रिमिनल जस्टिस नं. 144, कॅनबरा : आस्ट्रेलियन इंस्टीट्यूट ऑफ़ क्रिमिनोलॉजी, पृष्ठ : 1-6.

[8] एम. हेंडर्सन, पी. हेंडर्सन और सी. कियरनन, (2000) : 5.

[9] पी.जी. बॉस (2002) 'ऐम्बीगुअस लॉस : वर्किंग विथ फैमिलीज ऑफ़ द मिसिंग', *फैमिली प्रॉसेस*, वॉल्यूम-41 : 14-17.

क्षति' की उक्त अवधारणा परिवार के सदस्यों को होने वाले तनाव, तनावों से मुक़ाबला करने की रणनीतियों तथा उनके मनोसामाजिक प्रभावों का विश्लेषण करने का ढाँचा उपलब्ध अवश्य कराती है।[10]

कई बार गुमशुदा व्यक्तियों के परिवार पीछे छूटे सबूतों के अभाव में इस सोच पर अटके रहते हैं कि गुमशुदा जानबूझकर घर से गया या अनजाने में उसे ले जाया गया। ब्रिटेन में गुमशुदा व्यक्तियों पर हुए एक अध्ययन का यह निष्कर्ष था कि लगभग दो-तिहाई वयस्क गुमशुदा जान बूझकर तथा बाक़ी अनजाने में घर से चले जाते हैं या उनका परिवार से संपर्क टूट जाता है। अध्ययन का यह भी निष्कर्ष था कि अनजाने में घर से चले जाने वाले वयस्कों में से लगभग आधे डिमेंशिया या अन्य किसी मानसिक बीमारी से पीड़ित होते हैं।[11]

II

प्रस्तुत आलेख मध्य प्रदेश के ग्वालियर ज़िले के 37 पुलिस थानों में वर्ष 2007 से 2015 तक पंजीबद्ध समस्त गुमशुदा प्रकरणों (जिनमें दस्तयाब तथा अदम दस्तयाब दोनों प्रकार के प्रकरण सम्मिलित हैं) तथा उनके परिवारों में अभावबोध तथा उनकी आवश्यकताओं पर किए गए अनुभवाश्रित अध्ययन का एक भाग है। यह अध्ययन इस प्रत्यय पर आधारित है कि समस्या पीड़ित परिवार से बेहतर कोई और नहीं जानता। गुमशुदा व्यक्तियों को एक समस्या के रूप में वर्णित करना कठिन है, क्योंकि सामाजिक घटना के रूप में इस विषय के अनेक पक्ष तथा प्रत्येक प्रकरण से संबद्ध अपने लोक सरोकार हो सकते हैं। अत: अध्ययन हेतु शोध-प्रक्रिया के निर्धारण में पीड़ित परिवार को केंद्र में रखकर उसके मुखिया, घटना के अनुसंधान में संलग्न पुलिसकर्मी-अधिकारी तथा ग़ैर-सरकारी संगठनों से जुड़े लोगों को सम्मिलित किया गया। इस अध्ययन में 'परिवार' तथा 'संबंधियों' को वृहद संदर्भ में उपयोग किया गया है। सांस्कृतिक परिवेश में 'परिवार' में परिवार के सदस्य एवं 'संबंधियों' में निकट मित्र एवं सगे-संबंधी शामिल हैं।

अध्ययन विषय को गहनता से समझने के लिए त्रिकोणमितीय अध्ययन विधियों (अर्ध संरचनात्मक साक्षात्कार, पूरे परिवार के साथ समूह के रूप में एक साथ बातचीत तथा अर्ध सहभागी अवलोकन) के साथ गणनात्मक-गुणात्मक अध्ययन संयोजन प्रस्तुत किया गया। खोए-पाए गुमशुदा और उनके परिवारों पर किए गए इस अध्ययन में गुणात्मक तथ्यों को हितधारकों से विस्तृत चर्चा के उपरांत विकसित किया गया तथा श्रमसाध्य साक्षात्कारों के माध्यम से एकत्रित किया गया। अध्ययन के लिए चयनित 141 परिवारों में से 34 ऐसे परिवार थे जिनके परिजनों का साक्षात्कार दिनांक तक कोई पता नहीं था, वे अदम दस्तयाब थे। इन परिवारों के वयस्क सदस्यों से गहन साक्षात्कार किया गया, ये वे व्यक्ति थे जो 'गुमशुदा' के

---

[10] पी.जी.बॉस, (2007) 'ऐम्बीगुअस लॉस थ्योरी : चैलेन्जेज फ़ॉर स्कॉलर्स ऐंड प्रेक्टिसनर्स', *फैमिली रिलेशंस*, वॉल्यूम 56 : 105-111.

[11] ए.बीहल, एफ. मिशैल और जे. वेड, (2003) *लॉस्ट फ्रॉम व्यू : मिसिंग पर्संस इन द यूके,* ब्रिस्टॉल : द पॉलिसी प्रेस.

प्रकरण से जुड़े थे और जिन्हें प्रकरण के समस्त पहलुओं की जानकारी थी। प्रस्तुत आलेख में लाक्षणिक आधार पर चयनित ऐसे प्रकरणों को प्रस्तुत किया गया है जो समस्त परिवारों की आवश्यकताओं एवं चुनौतियों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

गुमशुदगी की घटनाएँ प्रथम दृष्टया गुमशुदा व्यक्ति के इरादे का प्रश्न लगती हैं – क्या व्यक्ति अपनी इच्छा से लापता होना चाहता था? क्या माता-पिता, पति/पत्नी, भाई-बहन या बच्चों से संबंध विच्छेद जानबूझकर थे? तथापि यह प्रत्यय उन व्यक्तियों को शामिल नहीं करता जो बिना किसी इरादे के अनजाने में लापता हैं। हो सकता है कि उन्हें किसी व्यक्ति द्वारा ज़बर्दस्ती ग़ायब किया गया हो या उनके साथ कोई दुर्घटना घटी हो अथवा वे किसी मानसिक परिस्थिति के कारण कहीं चले गए हों। तब प्रश्न उठता है कि क्या व्यक्ति का गुम हो जाना एक चुनी हुई या आरोपित स्थिति है? कुछ गुमशुदा व्यक्ति किसी भी प्रकार से स्वयं को गुमशुदा नहीं समझते, वे इसे अन्य स्थान पर एक नया जीवन जीना मानते हैं। इस प्रकार ऐसा व्यक्ति को उन लोगों की दृष्टि में ही 'गुमशुदा' माना जाएगा जो उसे ढूँढना चाहते हैं, न कि उसकी अपनी दृष्टि में।

गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों पर किए गए इस अध्ययन में घर से लापता होने को संबंध-विच्छेद के रूप में परिभाषित किया गया है, चाहे यह परिभाषा गुमशुदा द्वारा की गई हो या किसी अन्य के द्वारा; चाहे व्यक्ति का गुम हो जाना सुविचारित हो या बिना सोचे-समझे। अत: उक्त विश्लेषण गुम होने की ऐसी संकल्पना की ओर अग्रसर करता है जिसमें सातत्य है – जिसमें सोच-समझकर संबंध तोड़कर जाने वालों से लेकर बिना कुछ सोचे, बिना अपनी इच्छा के चले जाने वाले सम्मिलित हैं।

III

इस आलेख में परिवार के किसी व्यक्ति के गुम हो जाने पर उस परिवार के अन्य सदस्यों पर पड़ने वाले प्रभावों, उनके अभावबोध[12], उनकी आवश्यकताओं तथा चुनौतियों की समीक्षा की गई है। गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों से जब यह पूछा गया कि 'वे क्या चाहते हैं?' तब बहुत से परिवारों ने अपने अधिकारों की जानकारी होते हुए भी अधिकार की भाषा का प्रयोग नहीं किया। उन्हें मालूम था कि न्याय और क्षतिपूर्ति प्राप्त करना उनका अधिकार है तब भी उनके लिए अभावबोध चर्चा का विषय था न कि अधिकार। गुमशुदा व्यक्तियों के ज़्यादातर परिवार उन समस्याओं की अधिक बात कर रहे थे जिनका सामना वे प्रतिदिन कर रहे थे और उन आवश्यकताओं को बार-बार दोहरा रहे थे जिनसे ये समस्याएँ उपज रही थीं। इस प्रकार

[12] अभावबोध से तात्पर्य इस बात से लगाया गया है कि परिवार के सदस्य उन व्यक्तियों की तुलना में, जिनके साथ अपनी तुलना का औचित्य समझता है, अपने में कुछ अभाव का अनुभव करता है. यह अभाव उनमें न केवल उपलब्धि की आवश्यकता कम करता है और दूसरों पर निर्भर रहने की आवश्यकता में वृद्धि करता है, बल्कि इससे उनका आत्म-प्रत्यय प्रतिकूल तथा आत्मसम्मान कम हो जाता है एवं उनमें भाग्यवादिता, निराशा, लाचारी, आत्मदया तथा भाव शून्यता आदि समस्याएँ बढ़ जाती हैं.

उनके अभावबोध पर बातचीत की भाषा उनकी आवश्यकता बन गई थी। यद्यपि ऐसे परिवारों की आवश्यकताओं का सामान्यीकरण करना अत्यंत कठिन है क्योंकि ये स्थिर नहीं रहतीं और इनमें दिन-प्रतिदिन नई आवश्यकताएँ जन्मती रहती हैं। ये न केवल ग्रामीण व नगरीय परिवेश के आधार पर, परिवार की दशाओं, शैक्षणिक तथा सामाजिक-आर्थिक स्थिति के आधार पर भिन्न होती हैं वरन परिवारों के बीच में भी अलग-अलग होती हैं और ये भिन्नता परिवार के सदस्यों के परस्पर संबंधों पर निर्भर करती है। परिवारों की आवश्यकताओं में यह अंतर कई बार परिवार में गुमशुदा की परिस्थिति के आधार पर भी होता है।

साक्षात्कार के समय उत्तरदाताओं से अपने स्वजनों के गुम होने के संबंध में परिवार की अपेक्षाओं तथा प्राथमिकताओं के बारे में पूछा गया। इस प्रश्न के उत्तर में परिवार के सदस्यों ने कभी ढेर सारे प्रतिप्रश्न पूछे, कभी उनके पास कहने के लिए कुछ नहीं था; सिर्फ़ सूनी आँखें या कभी आँखों से बहती अश्रुधारा। इस प्रश्न के उत्तर में तीन प्रकार की प्रतिक्रियायें मिलीं :

> गुमशुदा व्यक्ति की नियति के बारे में यह सत्य जानना कि 'वह ज़िंदा है अथवा नहीं।' यह जानने की तीव्र इच्छा कि लापता व्यक्ति कहाँ है, किस हाल में है, सर्वोच्च प्राथमिकता थी। परिवार की आर्थिक सहायता, बच्चों की पढ़ाई, इलाज तथा भरण-पोषण दूसरी प्राथमिकता थी; जबकि व्यक्ति को घर से जाने के लिए प्रेरित करने वालों को दंड मिले, अंतिम प्राथमिकता थी। अधिकांश परिवार, हालाँकि अपनी प्राथमिकताओं पर स्पष्ट थे पर वे यह भी जानना चाहते थे कि उनके गुमशुदा स्वजन का क्या हुआ? साथ ही, कमाने वाले की अनुपस्थिति में आर्थिक सहयोग की अपेक्षा करते थे, जबकि बहुत ही कम परिवार मुख्य रूप से शहरी तथा शिक्षित, गुमशुदा के संबंध में न्याय को अपनी प्राथमिकता मानते थे। इस प्रकार, यह विश्लेषण विकल्पों के समुच्चय की अपेक्षा सापेक्षिक आवश्यकताओं के संस्तरण को दर्शाता है। विश्लेषण में यह स्पष्ट था कि गुमशुदा व्यक्ति के परिवारों के पुरुष सदस्य अधिकांशत: न्याय, दंड आदि जैसे राजनैतिक विषयों को महत्त्व दे रहे थे, वहीं महिलाओं के लिए गुमशुदा से जुड़े सामुदायिक तथा सामाजिक विषय अधिक महत्त्वपूर्ण थे।

IV

परिवारों की सामुदायिक एवं सामाजिक आवश्यकताएँ

अधिकांश परिवारों की पहली प्राथमिकता अपने परिजन की विश्वसनीय जानकारी प्राप्त करना होती है चाहे उसकी पृष्ठभूमि तथा अवस्थिति कुछ भी हो लेकिन ऐसे परिवार प्राय: अपने परिजन के गुम होने की पुष्टि अन्य व्यक्तियों से चाहते हैं ताकि उन्हें किसी प्रकार का संदेह न रहे। अधिकतर परिवार पहले अपने स्तर पर स्वजन को ढूँढ़ने का प्रयास करते हैं और जब उन्हें कोई ख़बर नहीं मिलती तब पुलिस को सूचना देते हैं और फिर वह व्यक्ति ' गुमशुदा' बन जाता है।

गुमशुदा की नियति के बारे में ज़्यादातर परिवार के सदस्यों में मतभिन्नता रहती है। अक्सर परिवार के पुरुष सदस्य व्यक्ति के लंबे समय तक न आने पर मृत्यु का संदेह करने लगते हैं जबकि महिलाएँ ऐसा नहीं सोचतीं। गुम होने की परिस्थितियों के बारे में स्पष्ट जानकारी का

अभाव अफ़वाहें फैलने का आधार बन जाता है। ये अफ़वाहें सामान्यत: गुमशुदा कहाँ हैं, किस हाल में है और वह क्यों गया है; इस बारे में होती हैं और गुमशुदा परिवारों को विचलित करती हैं। जब अफ़वाह गुमशुदा कहाँ है, इस बारे में होती है तब वह परिवार के प्रयासों को भ्रमित करती है। इस अफ़वाह के कारण कई बार परिवार के सदस्यों को तलाश करने वाले स्थान से विपरीत दिशा में तलाश करने जाना पड़ता है, जिससे समय और धन का अपव्यय होता है। जब अफ़वाह गुमशुदा के ज़िंदा रहने या मरने के बारे में होती है तब वह परिवार को विचलित कर देती है। इस अफ़वाह पर भरोसा करने के लिए तथ्य जुटाने के प्रयास परिवार प्रारंभिक तौर पर नहीं करते, बल्कि अफ़वाह फैलाने वाले या इस तरह की जानकारी देने वाले से ही गुमशुदा के संसार में न होने का सुबूत चाहते हैं; इस अफ़वाह पर वे विश्वास तब ही करते हैं जब उन्हें इस संबंध में पुख़्ता प्रमाण मिल जाते हैं। जब अफ़वाह गुमशुदा के घर से जाने के बारे में होती है, तब वह सीधे गुमशुदा के चरित्र या व्यवहार को प्रतिबिंबित करती है और इससे परिवार प्रभावित होता है।

> उनके बारे में पुलिस और कुछ लोगों ने बताया था
> कि उनकी दोस्ती किसी अन्य महिला से थी, शायद
> इसलिए वह चले गए। उन्होंने इस बारे में भी कभी
> चर्चा नहीं छेड़ी, न ही कभी उनके कार्य-व्यवहार से
> ऐसा लगा कि वे ऐसे होंगे। इस बात पर भरोसा
> नहीं कर पा रही हूँ, लेकिन इस बात से परेशान बहुत हूँ।
> (एक गुमुशदा की पत्नी, झाँसी रोड, ग्वालियर)

अधिकांश परिवारों में अपने परिजन को पुन: देखने की तीव्र और वास्तविक इच्छा थी। वे अपने परिजन के लापता होने के कुहासे को जल्दी से जल्दी छँटता हुआ देखना चाहते थे कि उनके परिजन कभी वापस नहीं लौटेंगे। जिन परिवारों से गुमुशदा बिना कोई संकेत दिए घर छोड़कर चले गए थे, वे परिवार गुमशुदा के मिलने के साथ यह जानने को भी आतुर थे कि उसके जाने की वजह क्या थी? ऐसे परिवारों में बच्चे, गुमशुदा के जाने के बाद परिवार में बने माहौल को लेकर हतप्रभ होते हैं तो कभी गुमशुदा को याद करके भावुक हो जाते हैं। समय के साथ हतप्रभ तथा आश्चर्यचकित होने की स्थिति धीरे-धीरे कम होने लगती है। बच्चे का भावुक होना गुमशुदा से उसके लगाव पर निर्भर करता है और यह लगाव बच्चे की ज़रूरतों से पैदा होता है। बच्चा गुमशुदा को उसी समय ज़्यादा याद करता है जो उसके और गुमशुदा के बीच एक साथ रहने, खेलने या क्वालिटी टाइम बिताने का होता है।

> बेटा 05 साल का था, जब नितिन बिना कुछ
> बताए काम से घर नहीं लौटे थे। नितिन और
> बेटे के बीच बहुत लगाव था। शाम को जब

> नितिन काम से लौटते थे तब वह उनके साथ
> खेलता था, बाजार जाता था। उनके जाने के
> बाद शुरू-शुरू में वह उसी समय पर उदास हो
> जाता था। अब धीरे-धीरे नॉर्मल हो रहा है लेकिन
> शाम के समय अभी भी कभी-कभी भावुक हो
> जाता है और पूछने लगता है कि मम्मी, पापा कब आएँगे?
> (एक गुमशुदा की पत्नी, चेतकपुरी, ग्वालियर)

ग्रामीण व नगरीय परिवारों के विचारों में सापेक्षिक आवश्यकताओं के संबंध में एक नाटकीय अंतर होता है। नगरीय परिवारों की अपेक्षा ग्रामीण परिवारों के सदस्यों का झुकाव गुमशुदा को तलाश करने के प्रयासों के साथ-साथ 'सर्वशक्तिमान' में भी होता है। जब इनके पास गुमशुदा को तलाश करने के संसाधन समाप्त हो जाते हैं तब गुमशुदा के लौटने की सारी उम्मीदें 'ऊपर वाले' में निहित हो जाती हैं।

> हमने अपने भाई विजयराम को 4-5 साल हर
> जगह ढूँढ़ा लेकिन वो नहीं मिला, इसके लिए
> घर में जो रुपया-पैसा था वह भी ख़र्च हो गया।
> जब कुछ नहीं बचा तो सब भगवान भरोसे छोड़
> दिया। हाँ, अब अगर कोई ख़बर मिलती है कि
> उसे फलाँ जगह देखा गया है तो वहाँ चले ज़रूर जाते हैं।
> (एक गुमशुदा का भाई, ग्राम-पनिहार, ग्वालियर)

साक्षात्कार के समय यह ज्ञात हुआ कि अधिकांश परिवार चाहे वे किसी भी धर्म को मानने वाले हों, उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति कुछ भी हो, वे कितने भी पढ़े-लिखे हों, अपने परिजन की तलाश में ऐसी सभी जगहों जाते हैं जहाँ उनके प्रियजन की कोई ख़बर या वापसी की कोई उम्मीद हो। कई बार यह जानते हुए भी कि उनके द्वारा दी गई सूचना झूठी होती है, वे बिना पुष्टि के केवल आस में तांत्रिकों, साधुओं, फ़क़ीरों से मिलते हैं। तो कभी वे गुमशुदा की विश्वसनीय जानकारी के लिए ज्योतिषियों के पास इसलिए जाते हैं कि वे उनके प्रश्नों का तुरंत उत्तर दे सकते हैं। चूँकि भारतीय समाज में ज्योतिष को धर्म के साथ जोड़कर देखा जाता है अत: सामान्य व्यक्ति के लिए उसकी विश्वसनीयता को नकारना कठिन होता है।

> मैंने अपने बच्चे की तलाश में अब तक 8 लाख
> रुपयों से ज़्यादा ख़र्च कर दिया है। जिसने जहाँ
> बताया वहाँ दौड़े-दौड़े गए, कभी ख़ुद तो कभी
> किसी रिश्तेदार को पैसा देकर भेजते थे। इसमें
> सारी जमा-पूँजी खर्च हो गई। 1 लाख से ज़्यादा

> रुपया तो कम से कम 50 साधू-बाबाओं, मुल्लाओं और ज्योतिषियों पर ख़र्च कर दिया। सभी ने अलग-अलग दिशाओं और स्थान पर जाने की सलाह दी लेकिन परिणाम सिफ़र मिला। इन लोगों से भरोसा उठ गया है किंतु उम्मीद तो अब भी बाक़ी है कि शायद कोई सही सूचना दे दे। इसी भरोसे की वजह से इनकी बात भी माननी पड़ती है।
>
> (एक गुमशुदा के पिता, टेकनपुर, ग्वालियर)

प्राय: गुमशुदा परिवार के सदस्य यह स्वीकार नहीं कर पाते कि उनके परिजन की मृत्यु हो चुकी है, इसलिए उनमें गुमशुदा की नियति का प्रमाणपत्र प्राप्त करने की प्रबल इच्छा होती है। वे ऐसी सूचना चाहते हैं जिसमें किसी प्रकार का कोई संदेह न हो, भले ही सूचना परिजन की मृत्यु से ही क्यों न जुड़ी हो, क्योंकि गुमशुदा के बारे में यह अनिश्चितता कि उसके साथ कोई क्षति हुई भी है अथवा नहीं, परिवार के वर्तमान को प्रभावित करती है। परिवार के सदस्यों को यह भी पता नहीं होता कि उन्हें कभी इस अनंत कष्ट से मुक्ति मिलेगी भी या नहीं।

अध्ययनकर्त्ताओं ने पूरे परिवार के साथ समूह के रूप में एक साथ बातचीत में पूछा कि क्या किसी प्रियजन की मृत्यु से जन्मे वियोग और क्षति की तुलना गुमशुदा के जाने के वियोग से की जा सकती है? क्या गुमशुदा के जाने से उपजा भावनात्मक दबाव गुज़रते समय के साथ वैसे ही कम हो जाता है या समाप्त हो जाता है जैसे परिवार के किसी सदस्य की मृत्यु के बाद हो जाता है? परिवार के अधिकांश सदस्यों ने इन प्रश्नों को बेमानी माना और इस विचार को अस्वीकार कर दिया। कुछ प्रकरणों में तो इसकी स्वीकार्यता थी किंतु गुमशुदा की स्थिति के संबंध में अनिश्चितता के कारण ऐसे प्रकरणों में शोक प्रक्रिया अनुपस्थित होती है और अंतत: कष्ट बरक़रार रहता है। वहीं अधिकांश सदस्यों का कहना था कि समय बीतने के साथ घाव नहीं भरते बल्कि वो दर्द और बढ़ जाता है, वो वर्षों बाद भी उतना ही रहता है जितना कि पहले दिन था।

> उस मनहूस रात को कभी नहीं भूल पाती। 20 अप्रैल, 2000 को रात 8 बजे खाना खाकर मेरा छोटा बेटा पवन (25 वर्ष) दोस्त के घर पढ़ने की कहकर निकला था। जब सुबह घर नहीं लौटा तो उसके भाई और पिता ने तलाशना शुरू किया। 18 साल की इस तलाश में भाई की ठेकेदारी और पिता का स्वास्थ्य जाता रहा।

रो-रोकर आँसू भी सूख गए लेकिन उसकी याद,
उसके जाने का दु:ख ज़िंदा है और अब ये
मरने के साथ ही जाएगा।
(एक गुमुशदा की माँ, कांतिनगर, ग्वालियर)

जब परिवारों को यह ठोस आभास हो जाता है कि गुमशुदा मर चुका है; चाहे वे किसी भी धर्म के अनुयायी हों, उन्हें उसकी पार्थिव देह या पूरे साक्ष्य चाहिए ताकि वे विश्वास कर सकें तथा आवश्यक धार्मिक संस्कार कर सकें। सामान्यत: परिवार, पुलिस द्वारा की गई लाश की पहचान पर विश्वास नहीं करते तथा बहुत से परिवारों को यह मिथ्या विश्वास होता है कि वे लाश को कपड़ों तथा धारित वस्तुओं से पहचान सकते हैं। वास्तविक रूप से अधिकांश परिवार मृत देह तथा मानव अवशेषों की पहचान की प्रक्रिया से अनभिज्ञ होते हैं क्योंकि उन्होंने कभी नहीं सोचा होता है कि वे कभी परिजन की लाश देखेंगे। इनके लिए एक दस्तावेज़ उनके परिजन की मृत्यु का पर्याप्त प्रमाण नहीं होता क्योंकि भारतीय संस्कृति में मृत्यु सदैव वह है जिसे परिवार द्वारा सीधे अनुभव किया जाता है; इसलिए मृत्यु के प्रमाण की यह आवश्यकता क़ानून प्रवर्तन एजेंसियों के प्रति अविश्वास के कारण और अधिक घनीभूत हो जाती है।

साड़ी के शोरूम में नौकरी करने वाले राजेंद्र गुप्ता का
बड़ा बेटा अभय (20 वर्ष) कॉलेज की पढ़ाई के साथ एक
निजी बैंक में पार्ट टाइम नौकरी करता था। 6 अप्रैल
2015 को प्रतिदिन की तरह वह नौकरी पर गया लेकिन
लौटा नहीं। राजेंद्र कह रहे थे कि सब जगह फ़ोन से
पता लगाने के बाद वह पुलिस थाने जा रहे थे और बेटे
को कॉल भी कर रहे थे। एक बार कॉल लग भी गया तो
फ़ोन रिसीव करने वाले ने अभय के अपहरण की बात
बताई और 20 लाख रुपये का इंतज़ाम करने के लिए कहा।
बड़ी मुश्किल से पुलिस ने अपहरण के मामले
को सामान्य गुमशुदगी में पंजीबद्ध किया और फिरौती
के फ़ोन को बेटे की नाटकबाज़ी बताती रही। 14 जुलाई
को अख़बार में छपी ख़बर से उन्हें पता चला कि उनके
बेटे की हत्या कर दी गई है और उसका कंकाल
बरामद हो गया है। राजेंद्र कह रहे थे कि अगर
मेरी बात को गंभीरता से लिया जाता तो भले ही
उनका बेटा ज़िंदा नहीं मिलता
लेकिन उसकी पार्थिव देह तो सही अवस्था में मिलती।
अब तो कंकाल पर पड़े कपड़ों से ही उसकी पहचान कर पाए हैं।
(एक गुमशुदा का पिता, कंपू, ग्वालियर)

V

परिवारों की वित्तीय आवश्यकताएँ

अध्ययन में सम्मिलित 141 परिवारों में से 102 परिवारों की आर्थिक स्थिति निम्न या निम्न-मध्यम स्तरीय थी तथा उनके पास जीवनयापन के संसाधन भी अपर्याप्त थे। इन परिवारों के लिए 'वित्तीय आवश्यकताएँ' द्वितीय वरीयता थीं। अधिकांश परिवारों पर गुमशुदा को ढूँढ़ने के भावनात्मक तथा अन्य व्यावहारिक दबावों के कारण उनके सदस्यों के नौकरी-धंधों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, यहाँ तक कि उनकी जमा-पूँजी चुक जाती है और वे क़र्ज़ में डूब जाते हैं। कुछ परिवारों ने गुमशुदा व्यक्ति का क़र्ज़ लौटाने के लिए क़र्ज़ लिया था ताकि उसकी और परिवार की बदनामी न हो और जब वह लौटे तो उस पर कोई वित्तीय दबाव न रहे, भले ही वह किसी वित्तीय दबाव में ही क्यों न लापता हुआ हो।

> संजय ने अपने परिवार का साथ ठीक अपनी शादी की सालगिरह के दिन छोड़ा। 2 फ़रवरी, 2014 को पूनम अच्छा खाना बनाकर अपने पति का इंतज़ार कर रही थीं। पूनम कहती हैं कि संजय रात 11 बजे तक घर नहीं आए और जब आए तो शराब के नशे में अपने माता-पिता से झगड़ा कर कहीं चले गए। उनके दोस्त राजू और मनीष राठौर ने बताया कि संजय पर क़र्ज़ था और वह उस रात भी पैसे माँगने आया था, फिर कहाँ गया नहीं मालूम। पूनम को लगता है कि ज़्यादा पैसा कमाने की लालसा में दिल्ली न चले गए हों। हम उन्हें दिल्ली नहीं ढूँढ़ सकते। पुलिस से दिल्ली पुलिस की सहायता लेने के लिए बार-बार कहने पर पुलिस कहती है कि अपनी मर्ज़ी से गया है, बच्चा नहीं है। जब उसका मन होगा लौट आएगा। तीन साल से वृद्ध सास-ससुर और दो बेटों को पालने में बहुत तकलीफ़ हो रही है, ऊपर से कर्ज़दारों का क़र्ज़ चुकाने में घर की जमा-पूँजी भी नहीं बची। अब पता नहीं क़िस्मत क्या करवाने वाली है?
>
> (एक गुमशुदा की पत्नी, माधौगंज, ग्वालियर)

कमाने वाले व्यक्ति का परिवार को छोड़कर चला जाना आवश्यक रूप से परिवार की आर्थिक सुरक्षा को कम करता है, परिणामत: ऐसे परिवार जो सँभल कर चल रहे थे, संघर्ष करने लगते हैं और जो संघर्ष कर रहे होते हैं वे गंभीर दरिद्रता से घिर जाते हैं। अध्ययन में कुछ परिवार ऐसे थे जिनमें परिवार का दायित्व सँभालने वाले के लापता होने के बाद पीछे केवल वृद्ध, महिलाएँ

या बच्चे रह गए थे; कोई ऐसा नहीं था जो उनकी सहायता करे, उन्हें आश्रय दे। ऐसे प्रकरणों में परिवार या तो अपने रिश्तेदारों पर आश्रित हो जाते हैं या भीख माँगने को मजबूर होते हैं या जीवनयापन के लिए कोई अनैतिक साधन अपना लेते हैं। वहीं, कई गुमशुदा व्यक्तियों की पत्नियाँ अपने ही घरों में सास-श्वसुर की निंदा झेल रही थीं, जिसके फलस्वरूप वे या तो अपने ससुराल छोड़ चुकी थीं या बदतर स्थिति में रहने के लिए मजबूर थीं। इन परिवारों में ऐसी स्त्रियों के साथ विधवाओं जैसा व्यवहार किया जा रहा था।

> आगरा-मुंबई हाईवे से सटे बरई गाँव में रहने वाला 30 वर्ष का रामअवतार 6 साल पहले अपना घर छोड़ गया। घर वाले उसके घर छोड़ने का कारण पत्नी से आए दिन होने वाले विवाद को मानते हैं। 29 जून, 2010 की सुबह वह काम पर जाने की कहकर निकला फिर लौटा नहीं। घरवाले कहते हैं कि पत्नी जूली हमारे बेटे को अलग करना चाहती थी। रामअवतार के जाने के बाद भी उसके ऊपर कोई असर नहीं हुआ और अपने मायके रहने चली गई। जबकि रामअवतार के पड़ोसियों का कहना था कि रामअवतार तो अपनी बीवी और बच्चे से बहुत प्यार करता था लेकिन जूली के सास-ससुर उसे चैन से नहीं रहने देते थे और रामअवतार के जाने के बाद तो उससे बहुत बुरा व्यवहार करने लगे थे, इसलिए वो बच्चे के साथ अपने पीहर चली गई।

VI

परिवारों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ

यद्यपि प्रस्तुत अध्ययन द्वारा किसी व्यक्ति के लापता होने से परिवार के सदस्यों में उत्पन्न कुछ मनोवैज्ञानिक बाधाओं को पहचाना जा सकता था, किंतु न तो अध्ययन का पद्धतिशास्त्र और न ही अध्ययनकर्ता उस असामान्य व्यवहार के लिए विश्लेषण की विशेषता रखते थे। अत: अध्ययन में परिवार पर पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभावों का एक सामान्य विश्लेषण कर मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं संबंधी निष्कर्ष निकालने का प्रयास किया गया है।

गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों की भावनाओं की कोई भी सीमा हो सकती है जैसे उदासी, चिंता, अपराधबोध, ग़ुस्सा तथा उम्मीद। वे उम्मीद की अधिकतम सीमा से लेकर उदासी की निम्नतम सीमा तक अनुभव कर सकते हैं। अध्ययन में सम्मिलित अदम दस्तयाब गुमशुदा व्यक्तियों के परिवारों ने बताया कि जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, गुमशुदा के वापस आने की उम्मीद की डोर कमज़ोर पड़ने लगती है लेकिन टूटती नहीं है। गुमशुदा के प्रति लगाव

तथा परिवार की ज़रूरतें परिवार के सदस्यों के मनोविज्ञान पर प्रभाव डालती हैं और उनके जीवन के प्रत्येक पक्ष-जीवनशैली, व्यवसाय, शिक्षा तथा संपर्क आदि को प्रभावित करती हैं। जीवन के ये पक्ष एक-दूसरे को भी प्रभावित करते हैं तथा परिवार इन्हें कभी एक ही समय, कभी अलग-अलग अनुभव करते हैं। अनौपचारिक चर्चा के दौरान यह ज्ञात हुआ कि जिन परिवारों में गुमशुदा अपने पीछे संपत्ति छोड़कर गए थे तथा उससे परिवार की ज़रूरतें पूरी हो रही थीं, उन परिवारों द्वारा गुमशुदा को तलाशने के प्रयास वैसे नहीं किए जा रहे थे जैसे अपेक्षित थे और उस व्यक्ति के न होने का भाव भी उनके मन से हटने लगा था। इसके विपरीत अधिकांश ऐसे परिवार थे जहाँ गुमशुदा से भावनात्मक लगाव परिवार की ज़रूरतों पर भारी था तथा उदासी उनका स्थिर आधारभूत मनोभाव बन गई थी। परिवार के सदस्यों का कहना था कि यह भाव किसी भी समय जैसे गुमशुदा के पसंद का खाना बनने पर, जन्मदिन पर या त्यौहारों पर बार-बार उभरता है।

अपराधबोध और ग़ुस्से को अध्ययन में उपयोगी संवेग नहीं माना गया है क्योंकि परिवारों में ग़ुस्सा एक मनोदशा के रूप में तो बातचीत में दिखा परंतु उसकी अवधि बहुत ही कम थी तथा वह मनोदशा गुमशुदा की चिंता संबंधी औचित्य के लिए थी। चूँकि अधिकांश प्रकरणों में गुमशुदा ने घर छोड़ने के कारणों के संकेत नहीं छोड़े थे इसलिए अपराधबोध जैसा संवेग अनुपस्थित लगा। हाँ, परिवार के सदस्यों में अत्यधिक चिंता एक स्वाभाविक भावनात्मक अस्थिरता थी जिसके लक्षण परिवार के सदस्यों में अनिद्रा, रक्तचाप बढ़ना आदि के रूप में परिलक्षित हो रहे थे। चिंता का कारण गुमशुदा के बारे में लगातार सोचते रहना तथा किसी ख़बर का इंतज़ार था; विशेषत: बुरी ख़बर का, जो कभी भी आ सकती थी। शत-प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं ने परिजन के लापता हो जाने के बाद गंभीर अस्वस्थता की चर्चा की जो संभवत: लगातार चिंता व तनाव का परिणाम थी।

> तुम सो ही नहीं सकते ...हर चार पहिया की गाड़ी – जीप
> या कार जो भी घर की तरफ़ आती दिखती है तो बस यही
> लगता है कि पुलिस आ रही है– अभी आकर दरवाज़ा
> खटखटाएगी और कोई बुरी ख़बर देगी। और जब मैं डॉक्टर
> को दिखाने जाती हूँ तो वे कहते हैं कि मैं चिंता रोग से
> पीड़ित हूँ। वे मुझे नींद की दवाई दे देते हैं।
> (एक गुमशुदा की पत्नी, मुरार, ग्वालियर)

कई बार कोई ख़बर न मिलना अच्छी ख़बर हो सकता है, क्योंकि ख़बर मिलने में बुरी ख़बर मिलने का संशय समय गुज़रने के साथ बढ़ता जाता है। उम्मीद प्राय: सकारात्मक दृष्टिकोण दर्शाती है। कुछ गुमशुदा व्यक्तियों के परिवार भी यह विश्वास कर रहे थे कि उनके परिजन एक दिन अवश्य लौटेंगे लेकिन अन्य परिवारों के लिए उम्मीद इस साक्ष्य से जुड़ी थी

कि गुमशुदा किस स्थिति में है – वह जीवित है तो कहाँ है और यदि उसकी मृत्यु हो गई है तो उसके अवशेष कहाँ हैं? साक्षात्कार के समय उत्तरदाताओं ने बताया कि क़ानून प्रवर्तन एजेंसियों से उन्हें कोई उम्मीद नहीं थी। उनका कहना था कि उन्हें संशय था कि पुलिस उनके परिजन को ढूँढ़ने के लिए वह करेगी जो उसे करना चाहिए।

> बेटे की तलाश में थाने से लेकर अफ़सरों के घरों तक के चक्कर लगाए। फिरौती का फ़ोन आने के बाद भी पुलिस अफ़सर कहते थे कि तेरा बेटा ख़ुद गया है और अब ख़ुद ही फ़ोन करवा रहा है। मैंने जिन पर शक था उनके नाम भी बताए लेकिन पुलिस नाटक समझती रही, अपहरणकर्ता खुले घूमते रहे। अब बेटे का कंकाल मिला है। ऐसे में कोई पुलिस से क्या उम्मीद करेगा।
>
> (एक गुमशुदा का पिता, निंबालकर की गोठ, ग्वालियर)

गुमशुदा व्यक्तियों के परिवार उन क़ानूनों से अनभिज्ञ होते हैं जो उनके अधिकारों और सुविधाओं के लिए बने हैं और न ही उन्हें उन सहूलियतों को प्राप्त करने की प्रक्रियाएँ पता होती हैं। गुमशुदा के परिवारों के व्यावहारिक मुद्दों के निराकरण के लिए भी कोई वैधानिक ढाँचा नहीं है। आज भी अनेक परिवार गुमशुदा की अनिश्चित व अलिखित नियति के परिणामस्वरूप प्रशासनिक अड़चनों का सामना करते हैं, चाहे वो क्षतिपूर्ति का मामला हो या ज़मीन-जायदाद के मालिकाना हक़ के लिए आवश्यक काग़ज़ात का। अत: यह कहा जा सकता है कि गुमशुदा व्यक्ति के परिवारों की आवश्यकताएँ सामुदायिक व सामाजिक अधिक होती हैं, उन्हें आर्थिक व मनोवैज्ञानिक स्तर पर सतत संघर्षरत रहना पड़ता है, वे न्याय की बात अपेक्षाकृत कम करते हैं तथा सरकारी अभिकरणों से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कोई अपेक्षा नहीं रखते।